संबंध नहीं रखना चाहते। एक शेर-

कुछ नहीं दे सकीं इनकी नज़दीकियाँ,
दूरियाँ ठीक हैं ताजदारों से अब।

नैतिकता, सच्चाई, ईमान जैसे शाश्वत मूल्यों पर अडिग रहने वाले इक्का-दुक्का व्यक्तियों की शक्ति को बयान करना भी ज़हूर नहीं भूले। उनका ऐसा ही एक शेर-

हैं दरख़्तों की तरह क़ायम यहाँ जिसके उसूल,
कारवाँ चलते हैं ऐसे आदमी के साथ-साथ।

अपने एक उज्ज्वल शेर में ज़हूर नारी-मन की विश्वास की चाहत को कुछ यूँ बयान करते हैं-

मुझे तू सीप से बाहर निकाल लाया है,
हरेक हाल में रखना तू आबदार मुझे!

किसी भी पक्ष को जबरन बाँध कर रखने की प्रवृत्ति से भी ज़हूर सहमत नहीं। उनका मानना है-

इसी उम्मीद पर जाने दो उसको,
वो आएगा अगर होगा हमारा।

कुल मिला कर, जीवन के विविध आयामों के शेरों की धड़कन ज़हूर अहमद 'ज़हूर' की शायरी में सुनाई देती है। धर्म, समाज, राजनीति के अलावा मानव-मन के विभिन्न पक्षों की पड़ताल करने वाले मनोवैज्ञानिक शेर भी उनके यहाँ पर्याप्त संख्या में हैं। मैं समझता हूँ- ऐसे रोशन-ख़याल गुमनाम शायर को 'अक्षर पर्व' के सुधी पाठकों से रू-ब-रू करवाना एक प्रकार का पुण्य कार्य ही है! ■

ज़हूर अहमद 'ज़हूर' की ग़ज़लें

पता : श्री अशफ़ाक अहमद (पुत्र), द्वारा, डॉ. हरि प्रकाश 'हरि', 'प्रतीक' श्रीराम कॉलेनी, शिवपुरी-473551 (म.प्र.)

संक्षिप्त परिचय

जन्म : 5 जून, 1939 (ग्वालियर)
लेखन- काल : 5 दशक
प्रकाशन : सदा-ए-उर्दू, लकीर, फ़नकार, गुफ्तगू आदि
साहित्यिक अवदान : बज़्मे-उर्दू और जनवादी लेखक संघ, शिवपुरी (म.प्र.) के अध्यक्ष रहे।
संपादन : 5 वर्ष तक अनियतकालीन हस्तलिखित पत्रिका 'इदराक' का संपादन।
सेवा-निवृत्ति : ज़िला आबकारी अधिकारी के पद से सेवा-निवृत्त।
मृत्यु- दिनाँक : 11 मई, 2008

(एक)

वो आँख क्या है आँख कि जिसमें नमी न हो,
वो ज़िन्दगी भी क्या है जो ग़म से हरी न हो।
जो हो गया सो हो गया, अब ये रहे ख़याल,
रुसवाइयों की बात गली-दर-गली न हो।
ये बात और है कि रहें दूरियाँ तमाम,
लेकिन, दुआ-सलाम में कोई कमी न हो।
हर साँस उसकी याद में लेता हूँ रात-दिन,
जब भी मिले वो राह में, शर्मिन्दगी न हो।
रोशन चिराग़ कुछ तो मुहब्बत के कीजिए,
ऐसा नहीं, चिराग़ जलें, रोशनी न हो।
ये अहतियात फिर भी रहे दरमियां 'ज़हूर',
कल, दोस्ती रहे न रहे, दुश्मनी न हो।

(दो)

अजीब इक फ़िक्र, इक सदमा-सा रहता है मेरे दिल में,
हज़ारों मुफ़लिसों का दर्द ज़िन्दा है मेरे दिल में।
बहुत दिन हो गये देखा था मैंने उजड़ी बस्ती को,
तसादुम का अभी कुछ दर्द उठता है मेरे दिल।
मुहब्बत तो मुहब्बत है, अदावत है कहूँ कैसे?
दिया उम्मीद का अब भी तो जलता है मेरे दिल में।
निभाना तो निभाना है, बहाना तो बहाना है,
न जाने क्यों यही अहसास तन्हा है मेरे दिल में।
उसे भूले हुए हालांकि अरसा हो गया, लेकिन,
अभी साया उसी बुत का भटकता है मेरे दिल में।
पता अपना बताता है, न मुझ से बात करता है,
'ज़हूर' इक शख़्स जो ख़ामोश बैठा है मेरे दिल में।

(तीन)

ऐसा नहीं किया, कभी ऐसा नहीं किया,
लाशों पे चढ़ के क़द कभी ऊँचा नहीं किया!
उसने दिया फ़रेब, ये अच्छा नहीं किया,
मैंने ख़ुलूसे-दिल कभी छोटा नहीं किया।
इलज़ाम जो भी आये लिये अपने सिर, मगर,
बिकते हुये मकान का सौदा नहीं किया।
माँ ने रिवाज नस्ल के मंजूर कर लिये,